International Journal of Multidisciplinary Research and Development

International Journal of Multidisciplinary Research and Development

Volume: 2, Issue: 9, 749-751
Sep 2015
www.allsubjectjournal.com
e-ISSN: 2349-4182
p-ISSN: 2349-5979
Impact Factor: 4.342

विरेन्द्र सिंह
शोधार्थी, पी. एच. डी.,
राजनीतिक विभाग, कलिंगा विश्वविधालय, रायपुर, छतीसगढ़, भारत।

Correspondence
विरेन्द्र सिंह
शोधार्थी, पी. एच. डी.,
राजनीतिक विभाग, कलिंगा विश्वविधालय, रायपुर, छतीसगढ़, भारत।

विवेकानन्द के अनुसार व्यवहारिक वेदान्त का दार्शनिक विवेचन

विरेन्द्र सिंह

प्रस्तावना

भारत में सम्प्रति जितने दार्शनिक सम्प्रदाय हैं, वे सभी वेदान्त दर्शन के अन्तर्गत आते हैं। वेदान्त की कई प्रकार की व्याख्याएँ हुई हैं और वे सभी प्रगतिशील रही हैं। प्रारम्भ में व्याख्याएँ द्वैतवादी हुई, अन्त में अद्वैतवादी। वेदानत का शाब्दिक अर्थ है वेद का अन्त। वेद हिन्दुओं के आदि धर्मग्रन्थ है। कभी–कभी पाश्चात्य देशों में वेद को केवल ऋचाएँ और कर्मकांड ही समझा जाता था, किन्तु अब इनको अधिक महत्त्व नहीं दिया जाता और भारत में साधारणतः वेद शब्द से वेदान्त ही समझा जाता है।

वेदान्त यह भी बतलाता है कि समाज या कर्म के किसी क्षेत्र में शक्ति की जो विशाल राशि प्रदर्शित होती है, वह वस्तु भीतर से बाहर आती है, इसलिए जिसे अन्य समुदाय अन्तः स्फूरण कहते हैं, उसे वेदान्त मनुष्य का बहिः स्फुरण कहने की स्वतन्त्रता देता है। फिर भी वह किसी सम्प्रदाय से झगड़ा नहीं करता। ज्ञात या अज्ञात रूप से हर मनुष्य का बहिः रफुरण करने की स्वतन्त्रता देता है। फिर भी वह किसी सम्प्रदाय से झगड़ता नहीं। ज्ञात या अज्ञात रूप से मनुष्य की दिव्यता को व्यक्त करने का प्रयत्न कर रहा है।

वेदान्त धर्म का सबसे उदात्त तथ्य यह है कि हम एक लक्ष्य पर भिन्न–भिन्न मार्गो से पहुँच सकते है। स्वामी जी ने साधारण रूप से इन मार्गों को चार वर्गों में विभाजित किया है और वे हैं– कर्म मार्ग, भक्ति मार्ग, योग मार्ग और ज्ञान मार्ग हैं, परन्तु स्वामी जी कहते है कि अन्त में ये सब मार्ग एक ही लक्ष्य में जाकर एक हो जाते हैं। सारे धर्म तथा कर्म और उपासना की साधन प्रणालियाँ हमें एक लक्ष्य की और ले जाती हैं।

परमाणु से लेकर मनुष्य तक, जड़तत्व के अचेतन प्राणहीन कण से लेकर इस पृथ्वी की सर्वोच्च सता– मानवात्मका तक, जो कुछ इस विश्व में प्रत्यक्ष करते हैं। वे सब मुक्ति के लिए संघर्ष कर रहे हैं। असल में ये समग्र विश्व इस मुक्ति के लिए संघर्ष का परिणाम है। हमारी पृथ्वी सूर्य से दूर भागने का प्रयास कर रही है तथा चन्द्रमा पृथ्वी से। प्रत्येक वस्तु के अन्दर अन्नत विस्तार की शक्ति है। इस विश्व में सब का मूल आधार मुक्तिलाभ के लिए संघर्ष करना है। लेकिन उन सब की कार्य विधि अलग–अलग हैं।

कर्मयोग

कर्मयोग द्वारा मन को शुद्ध करना है। शुभ या अशुभ कर्म किए जाने पर शुभ या अशुभ परिणाम अवश्य उत्पन्न होता है, कारण विधमान होने पर कोई भी शक्ति उसे रोक नहीं सकती। अतएव जब तक शुभ कार्य और अशुभ कार्य अशुभ कर्म उत्पन्न करते रहेंगे, कभी भी मोक्ष प्राप्त कर सकने की आशा से रहित आत्मा शाश्वत बन्धनों में पड़ी रहेगी। कर्म केवल शरीर तथा मन से समृद्व हैं, आत्मा से नहीं, वह आत्मा के समक्ष एक पर्दा भर डाल सकता हैं।

भक्ति योग

भक्ति, पूजा अथवा किसी रूप में प्रेम मनुष्य के लिए सबसे अधिक सरल, सुखद और स्वाभाविक मार्ग है। इस विश्व की नैसर्गिक स्थिति आर्कषण की है और अनिवार्य रूप में उसका अन्त वियोग में होता है। यहाँ तक कि मानव ह्रदय में प्रेम मिलन की नैसर्गिक प्रेरणा है, और यघपि वह स्वयं कलेश का एक बड़ा कारण है, सम्यक् पात्र के प्रति सम्यक् रूप से निर्दिष्ट होने पर वह मुक्ति प्रदान करता है।

राजयोग

इस योग की संगति इन योगों में प्रत्येक से हो जाती है। आस्थावान या आस्थारहित सभी वर्गों की जिज्ञासाओं से इसकी संगति हो जाती है, और यह धार्मिक जिज्ञासा या यथार्थ उपकरण है। जिस प्रकार हर विज्ञान की अनुसंधान करने की अपनी विशिष्ट पद्धति होती है, उसी प्रकार राजयोग धर्म की पद्धति है।

ज्ञानयोग

यह तीन अंगों से विभिक्त है। पहला : इस सत्य का श्रवण है कि आत्मा ही एक मात्र वास्तविकता है

और सब माया है। दुसरा : इस दर्शन पर सभी दृष्टिकोणों से मनन। तीसरा : इसके आगे सारे तर्क वितर्क को वर्जित करके सत्य की अनुभूति प्राप्त करना। यह अनुभूति इतने प्रकार से प्राप्त होती है (1) इस बात से निश्चय है कि ब्रह्य ही सत्य है और सब मिथ्या है। (2) भोग की समग्र इच्छा का त्याग, (3) मन और इन्द्रियों का समग्र, (4) मुक्त होने की तीव्र आंकाक्षा। इस सत्य की सतत् धारणा और आत्मा को उसके वास्तविक स्वरूप का सदैव स्मरण कराते रहना ही इस योग के मार्ग हैं। यह योग सर्वोच्च एवं कठिनतम् है। इसको बुद्धि के द्वारा तो बहुत से लोग ग्रहण कर लेते हैं। लेकिन उसकी सिद्धि बहुत कम लोग कर पाते हैं।

वेदान्त दर्शन

विवेकानन्द ने वेदान्त को व्यावहारिक रूप में हिन्दुओं का धर्मग्रंथ कहा है। उनका कहना है कि भारत में सम्प्रति जितने दार्शनिक सम्प्रदाय है, वे सभी वेदान्त दर्शन के अन्तर्गत आते हैं। वेदान्त का शाब्दिक अर्थ है 'वेद का अन्त'। वेद हिन्दुओं के आदि धर्म ग्रन्थ है। कभी–कभी पाश्चात्य देशों में वेद को केवल ऋचाएं और कर्मकाण्ड समझा जाता था। किन्तु अब इनको अधिक महत्व नहीं दिया गया और भारत में साधरणतय वेद से वेदान्त को समझा। यहां के टीकाकार जब धर्मग्रन्थों से कुछ अद्धेत करना चाहते हैं तो साधारणतयः वे वेदान्त से ही उद्धेत करते है। ये लोग वेदान्त को श्रुति कहते है। ऐसी बात नहीं है कि जो ग्रंथ वेदान्त के नाम से विख्यात है, उनकी रचना वैदिक कर्मकाण्ड के बाद हुई। वेदों को दो बड़े भागों में विभक्त किया है। – कर्मकाण्ड, जो मनुष्य को यह सिखलाता है कि कर्तव्य नैतिकता का पालन तथा अन्य अनुष्ठानों द्वारा कैसे स्वर्ग को– जो कि भोग का उच्च स्थान है– प्राप्त कर सकता है और ज्ञान काण्ड जो उसे यह सिखलाता है कि उसका लक्ष्य स्वर्ग का उपभोग होना चाहिए, क्योंकि वह भी क्षणिक और अनित्य है,वरन् उसका ध्येय होना चाहिए– सर्वविध दुश्या दृश्या दृश्य जगत से परे होना तथा अपने आप में उस अद्तीय सर्वव्यापी ब्रह्य का साक्षात्कार कर लेना जो कि समस्त ज्ञान एवं शक्ति का केन्द्र है। अवश्य ही हिन्दुओं को इस दर्शन को अभिव्यक्त करने में सदियों का समय लगा।

आधुनिक युग में वेदान्त केसरी स्वामी विवेकानन्द ने शंकराचार्य के अद्वैत दर्शन की व्यवावहारिक व्याख्या प्रस्तुत की है। वेदान्त की यह चिन्तन धारा समय–समय पर प्राप्त किन्चित परिवर्तनों के उपरान्त भी आज तक अपने आत्मतत्त्व को पूर्णतः सुरक्षित रखे हुए है। सदियों से अद्वैत–चिन्तन के मन्थन का काम चलता आ रहा है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि इस प्रकार के चिन्तन एवं मंथन से अद्वैत वेदान्त विश्व में अधिक प्रतिष्ठित हुआ और उसका स्वरूप और अधिक व्यवहार्य और ग्राह्य बना। अद्वैत वेदान्त के नवीन चिन्तन, मनन एवं निद्धियासन से एक नई दृष्टि का विकास हुआ। यह कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी कि इस नवीन चिन्तन में जो नयी दृष्टि विकसित हुई, वह आज नवीन शब्दावली की दृष्टि से एक नया नाम ग्रहण कर रही है और वह नाम है– नव्य वेदान्त।

नव्य वेदान्त नामक इस चिन्तन धारा को जो नवीन स्वरूप प्राप्त हुआहै, चाहे वह नया प्रतीत होता हो। किन्तु नया हैं नहीं, क्योंकि अद्वैत वेदान्त की नवीन व्याख्याओं का सिलसिला पर्याप्त पुराना है। यदि ऐतिहासिक दृष्टि से खोज करें तो अद्वैत वेदान्त को नयी दृष्टि से व्याख्यायित करने की परम्परा अष्टावक्र आचार्य से आरम्भ होती है। यह कहना तनिक भी आश्चर्यजनक नहीं है कि राजा जनक को आत्म तत्त्व के बारे में समझाने वाले महर्षि अष्टावक्र प्रणीत 'अष्टावक्र गीता' अपने आप में अद्वैत वेदान्त को नूतन रूप सेव्याख्यायित करने का सफल प्रयास करती है। अष्टावक्र गीता में नव्य वेदान्त के शुद्ध स्वरूप को देखा जा सकता है। राजा जनक का जीवन अष्टावक्र के उपदेशों के कारण ही वेदान्त का प्रतीक हो गया था। राजकार्यो में संलिप्त, वेद मर्मज्ञ, राजा जनक कितने तटस्थ रूप में जगत् में रहें, यह नव्य वेदान्त का जीता जागता उदाहरण है। इतना सब कुछ होते हुए भी आधुनिक संदर्भ में नव्य वेदान्त नाम से जिस दर्शन को स्वीकार किया जाता है। उसका अंकुर रामकृष्ण परमहंस एवं स्वामी रामतीर्थ से मिलता है। जो आधुनिक युग में आकर वेदान्त केसरी स्वामी विवेकानन्द एवं महर्षि अरविन्द के दर्शनों के रूप में स्पष्ट व्याख्यायित किया गया।

वेदान्त के मुख्य दार्शनिक

वेदान्त सतत विकासशील ज्ञान–परम्परा का नाम है। मानव का ज्ञान अनन्त है।अतः उसके ज्ञान की अवधि या सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती। यदि ऐसा करेंगे तो वेदान्त अपने आप में झूठा सिद्ध हो जाएगा। इस चिन्तन की आधुनिकता, व्यावहारिकता एवं जीवन की शाश्वता समस्याओं की कसौटी पर खरा उतरने की क्षमता देने वाले व्याख्याता दार्शनिक निम्नलिखित हैं –

1. रामकृष्ण परमहंस
2. स्वामी रामतीर्थ
3. स्वामी विवेकानन्द
4. श्री अरविन्द
5. जे॰ कृष्णामूर्ति
6. बिमला ठाकर
7. के॰सी॰ भट्टाचार्य इत्यादि।

श्री अरविन्द और विवेकानन्द को छोड़कर शेष उपर्युक्त चिन्तकों ने मूलतः शंकर का समर्थन किया है। स्वतन्त्र रूप से कोई विशिष्ट स्थापना करने में असमर्थ हो रहे हैं।

भारतीय दर्शन को आध्यात्मिक दर्शन कहा जाता है और आध्यात्मिकता से यही अभिप्रायः ग्रहण किया जाता है कि भारत का दर्शन 'सुपर नैचुरल' या पारलौकिक जगत् से सम्बद्ध पलायनवादी दर्शन है, पर वास्तविकता इसके बिल्कुल विपरीत है और जहाँ तक आधुनिक भारतीय चिन्तकों की बात है तो वे तो इहैलौकिक और पारलौकिक में समन्वय स्थापित करते हैं इसका विश्वास है कि आध्यात्मिक पूर्णता इहैलोकिक और पारलौकिक में समन्वय स्थापित करते है। इनका विश्वास है कि आध्यात्मिक पूर्णता इहैलौकिक पूर्णता प्राप्त करके ही उपलब्ध हो सकती है। आधुनिक चिन्तक कहते हैं कि जीव की वैयक्तिक उन्नति तब तक संभव नहीं जब तक कि उस सारे वातावरण का सुधार न हो जाए जिसमें वह रह रहा है। नव्य वेदान्ती चिन्तकों ने मोक्ष को बड़ी महत्ता दी है। वे मनुष्य को निज–भाग्य निर्माता मानते हैं इन्होंने मनुष्य की निजी उन्नति के साथ–साथ समस्त समाज की मुक्ति की बात की हैं बल्कि वे तो यहाँ तक कहते हैं कि वैयक्तिक मोक्ष समाज की मुक्तावस्था पर ही निर्भर करता है।[15] 20वीं शताब्दी का भारतीय चिन्तन भूतकालीन भारतीय दर्शन के उन सिद्धान्तों को अस्वीकार करता है जो युक्ति संगत नहीं है। 20वीं शताब्दी के दार्शनिकों ने जिनमें अरविन्द प्रमुख हैं, ने विकासवाद के सिद्धान्त की सुन्दर व्याख्या की है।

विवेकानन्द का व्यावहारिक वेदान्त

विवेकानन्द के पूर्ववर्ती एवं वेदान्त परम्परा के प्रमुख अद्धैतवादी दार्शनिक शंकराचार्य ने अपने दर्शन में ज्ञान पक्ष को अधिक महत्त्व दिया है। इसके फलस्वरूप उनके दर्शन में अत्यधिक जटिलता एवं सघनता आ गई थी। इससे सामान्य लोगों में यह धारणा विकसित हो गई थी कि अद्वैत वेदान्त केवल तत्त्वमीमांसीय सिद्धान्तों का पुंज हैं, जो साधारण मानवीय बुद्धि से अगम्य है और जिसका प्रत्यक्ष जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह केवल सन्यासियों तथा चिन्तनशील दार्शनिकों के लिए उपयोगी है। गृहस्थ लोगों से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। यह जगत् से पलायन अथवा सन्यास को बढ़ावा देता हैं। अतः यह निषेधात्मक एवं निराशावादी दर्शन है।

वेदान्त सिर्फ तत्त्वमीमांसीय सिद्धान्तों का समुच्चय है। इस प्रकार के समाज में व्याप्त धारणा के निवारण हेतु विवेकानन्द ने भी वेदान्त की नवीन, परिष्कृत तथा आशावादी व्याख्या प्रस्तुत करने के

आवश्यकता को, महसूस किया। इसीलिए उन्होंने वेदान्त के आदर्शवादी पक्ष को व्यावहारिक रूप दिया तथा वेदान्त दर्शन को व्यावहारिक वेदान्त के रूप में प्रस्तुत किया। इनके विचार में वेदान्त द्वारा प्रतिपादित सत्य–सिद्धान्त एकांगी नहीं वरन् सार्वजनीन है और साथ ही वे शाश्वत स्वरूप के हैं। फलतः वे सभी व्यक्तियों को चाहे वे किसी भी जाति, सम्प्रदाय अथवा राष्ट्र के और किसी भी युग के रहने वाले क्यों न हो, आदर्श जीवन–निर्माण में अपूर्व सहायता प्रदान करते हैं। इसके साथ ही वेदान्त केवल पर्वतों, गुफाओं तथा अरण्यवास में विकसित होने वाला सिद्धान्त नहीं है। यह नगर के कोलाहलपूर्ण व्यस्तताओं में भी विकसित हुआ है। इसके प्रतिपादक केवल ऋषि–मुनि अथवा संन्यासी ही नहीं रहे हैं, वरन् इसके प्रतिपादकों में राज–राजर्षि जैसे गृहस्थ भी रहे हैं, ऐसे दृष्टांत उपनिषदों में प्राप्त होते हैं। इन दृष्टांतों के आधार पर कहा जा सकता है कि वेदान्त केवल वन में ध्यान से ही नहीं प्राप्त किया गया अपितु उसके सर्वोत्कृष्ट भिन्न–भिन्न अंश सांसारिक कर्मों में व्यस्त मनीषियों ने भी चिंतित तथा प्रकाशित किये है।[17] विवेकानन्द का मानना यह भी है कि ''सिद्धान्त बिल्कुल ठीक होने पर भी उसे कार्य रूप में परिणत करना कठिन होता है। यदि उसे कार्य रूप में परिणत नहीं किया जा सकता, तो उसका बौद्धिक व्यायाम के अतिरिक्त कुछ मूल्य नहीं। अतएव वेदान्त को धर्म के स्थान पर आरूढ़ होने के लिए व्यावहारिक होना होगा। अपने जीवन की सभी अवस्थाओं में उसे कार्य रूप में परिणत करना होगा। केवल इतना ही नहीं अपितु आध्यात्मिक और व्यवहारिक जीवन के बीच जो काल्पनिक भेद है, उसे भी मिटाना होगा, क्योंकि वेदान्त एक अखण्ड वस्तु के सम्बन्ध में उपदेश देता है। वेदान्त कहता है कि एक ही आत्मा सर्वत्र विद्यमान है।''

मूल्यांकन

भारतीय दर्शन का विकास त्रिवस्टाओं में अवस्थित है– द्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद एवं अद्वैतवाद। भारत में यघपि द्वैतवाद और विशिष्टाद्वैतवाद अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच चुके थे, किन्तु अद्वैतवाद को जीवन में व्यावहारिक रूप देना अत्यनत कठिन प्रतीत होता था। विवेकानन्द ने इस सत्य का अनुभव किया कि युग को अद्वैतवाद के पूर्ण विकास की आवश्यकता है। उन्होंने अद्वैत वेदान्त को तर्क, अनुभव, विज्ञान और आधुनिक संसार सेसुसंगत करने का प्रयत्न किया। अपनी तत्त्वमीमांसा के अनुकूल नैतिक व सामाजिक सिद्धान्तों का विस्तार किया। इस प्रकार उन्होंने एक 'नवीन हिन्दू विश्व–दृष्टि का निर्माण किया। तत्त्वमीमांसीय दृष्टि से आचार्य शंकर से अधिक व्यापक दार्शनिक दृष्टि रखते हुए विवेकानन्द ने अमूर्त अद्वैत को मानवता के जीवित संदेश के रूप में प्रतिष्ठित किया तथा सभी मनुष्यों को समान दृष्टि से देखने का भाव विकसित किया।

संदर्भ सूची

1. स्वामी विवेकानन्द, विवेकानन्द साहित्य, नवम खण्ड, अद्वैत आश्रम, कलकत्ता, 2001, पृ॰ 117–118
2. सार्वलौकिक, नीति तथा सदाचार, रामकृष्ण, नागपुर, 2001, पृ0 66
3. भगवान बुद्ध तथा उनका सन्देश, रामकृष्ण मठ, नागपुर, 2001, पृ॰ 33
4. विवेकानन्द साहित्य, नवम खण्ड, पूर्वोक्त, पृ॰. 119
5. विवेकानन्द साहित्य, अद्वैत, आश्रम, कलकत्ता, सप्तम खण्ड, 2001, पृ॰ 324
6. विवेकानन्द साहित्य, अद्वैत आश्रम, कलकत्ता, तृतीय खण्ड, 2001, पृ॰ 22
7. नीलम शर्मा, 'बीसवीं शताब्दी का भारतीय दर्शन'', पृ॰ 16
8. स्वामी विवेकानन्द, भक्ति योग, रामकृष्ण मठ, नागपुर, 2001, पृ॰– 22
9. स्वामी विवेकानन्द साहित्य, अद्वैत आश्रम, कलकत्ता, सप्तम खण्ड, 2001, पृ॰ 119
10. ज्ञानयोग पर प्रवचन, रामकृष्ण मठ, नागपुर, 2000, पृ॰ 33
11. अरविन्द दर्शन, पृ. 22
12. विवेकानन्द साहित्य, अद्वैत आश्रम, कलकता, नवम खण्ड, 2001, पृ॰ 35व्यावहारिक जीवन में वेदान्त, रामकृष्ण मठ, नागपुर, 2001, पृ॰ 35